शिकंजा

नीला प्रसाद

शिकंजा

उन्हें टाटा करते अपने अंदर उठ रहे भावों ने असहज कर दिया। एक तो सही-गलत, नैतिकता-अनैतिकता का इक्वेशन हल नहीं हो पा रहा था, दूसरा कन्फ्यूजन अपने

अंदर की कसक का था। मैं असुरक्षित और कन्फ्यूज्ड-सी क्यों महसूस कर रही थी आखिर? क्या यह कोई अनूठी या बड़ी बात थी कि एक शादीशुदा युवा महिला अपने पौने दो साल के बेटे को पति की जिम्मेदारी पर छोड़कर, बिना गिल्ट अपने एक कुलीग की शादी में, अपने सीनियर यानी मेरे पति के साथ, एक दिन और एक रात के लिए बाहर जाए? पर यह छोटी बात भी नहीं थी - मेरे अंदर की माँ, पत्नी और महिला का तो यही मानना था।

मैं तो ऐसा सोच भी नहीं पाती कि सिर्फ अपनी खुशी के लिए नन्हीं बेटी को पति की जिम्मेदारी पर सोती छोड़, मुँह अँधेरे अपने बॉस के साथ शहर से बाहर किसी ऐसी शादी में चली जाऊँ, जहाँ मेरे होने, न होने से कोई फर्क नहीं पड़ने वाला हो। तो क्या आजकल की महिलाएँ बदल रही हैं, उनकी सोच और वैल्यू सिस्टम बदल रहे हैं? सवाल यह भी था कि पूर्वा के पति ने कोई आपत्ति क्यों नहीं उठाई और मेरे पति, जिन्होंने खुद कभी बेटी के छोटी होते उसे छोड़कर मेरे कहीं भी जाने को स्वीकृति नहीं दी, अपनी जूनियर के नन्हें बेटे को छोड़कर अपने साथ शादी में जाने की बात पर हामी क्यों भरी? जब पत्नी का मामला हो तब एक वैल्यू सिस्टम और जिंदगी में उपस्थित अन्य महिलाओं के लिए अलग? पर मैं ये उसाँसें क्यों भर रही थी? क्या मैं चाहती थी कि ऐसा होना किसी तरह रुक जाए या फिर खुद ऐसा न कर पाने की कसक में उसाँसें भर रही थी? कहीं ऐसा तो नहीं कि एक युवा महिला का मेरे मिडिल एज पति के साथ एक दिन और एक रात अकेला होना मुझे असहज कर रहा था?

बाहर तो अभी अँधेरा ही था। पहले तल्ले के अपने फ्लैट की बालकनी से मैंने उन्हें टैक्सी में बैठते देखा। टैक्सी चली गई तो मैंने पति के चेहरे के भावों को रेशे-रेशे कर समझने की कोशिश की। वे कतई असहज नहीं थे। उन्हें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता था कि उनकी जूनियर, अपने नन्हें बेटे को सोता छोड़, बाय तक बोले बिना, उनके साथ अपने एक कुलीग की शादी में दिल्ली से चंडीगढ़ जा रही है और अगले दिन तक साथ ही रहेगी। उन्होंने तो यह तक नहीं सोचा कि मुझे कैसा लगेगा... और मैं? मैं यह सोच-सोचकर परेशान हो रही थी कि बच्चा जब नींद से जागकर माँ को खोजेगा और उसे माँ नहीं मिलेगी, तब बच्चे को कितना बुरा लगेगा! फिर वह दिन भर माँ का इंतजार करता रहेगा कि कब माँ दिखे, लाड़ लड़ाए, खिलाए-नहलाए... और माँ? वह तो मस्ती में दूसरे शहर की सैर कर रही होगी। फिर रात हो जाएगी तो बेटा, रात को माँ से सटकर सोने के इंतजार में, नींद को भगाता माँ के इंतजार में जागा रहेगा और माँ, घर और बेटे से लगभग ढाई सौ किलोमीटर दूर, चमकीली साड़ी पहने, गहने लादे, सजी-धजी, कुलीग की बारात में ठुमके लगा रही होगी... मैं उदास होने लगी। पर

अपनी उदासी और कसक में डूबने या उसे विश्लेषित करने तक का समय तक नहीं था। बिटिया को स्कूल जाने को उठाना था, उसका टिफिन तैयार करना था, नाश्ता बनाना था, उसे बस स्टॉप तक छोड़ने जाना था...

यंत्रचालित ढंग से घड़ी की सुइयों के हिसाब से काम होने लगे। मैं रसोई में हड़बड़ी में टिफिन तैयार कर रही थी कि उनका फोन आ गया। स्टेशन पहुँच गए थे। 'हाँ, पूर्वा भी पहुँच गई है। खुद ही कार चलाकर आई और कार स्टेशन की बगल में किसी परिचित के यहाँ छोड़कर, ऑटो करके स्टेशन पहुँच गई।' यह सब सुनते मुझे ऐसा लगा कि पति फिर से मुझे याद दिला रहे हैं कि देखो, तुम तो कार चला नहीं पाती, वरना मुझे स्टेशन छोड़ आती न... सोचा कि उन्हें याद दिला दूँ कि मैं कार चलाती होती, तब भी स्टेशन तक नहीं जा पाती, क्योंकि आज बेटी का यूनिट टेस्ट है, भले ही अपनी तैयारी में डूबे, खोए-से पति को इसका भान तक न हो! मैंने तो कल शाम से उसकी स्कूल ड्रेस प्रेस करते, दूसरी तैयारी करते, इतनी बार कहा, पर उनके दिमाग ने नोट ही नहीं किया... सुबह एक बार भी इसका जिक्र नहीं किया उन्होंने! 'ठीक है, अभी बेटी का टिफिन बना रही हूँ, फिर बाद में बात करते हैं', कहकर मैंने फोन काट दिया।

थोड़ी भागमभाग हो गई पर सब कुछ निबट गया। बेटी की स्कूल बस रवाना हो गई तो मैंने चैन की साँस ली। अब अपनी तैयारी करनी थी कि चार्टर्ड बस न छूटे। जाने क्यों आज सुबह से इतने एसएमएस पर एसएमएस आ रहे थे, पर पढ़ने का समय किसे था! कामवाली को शाम की छुट्टी चाहिए थी, मैंने नहीं दी। खुद ही इस कदर थकी-थकी-सी थी कि शाम को ऑफिस से आकर बरतन माँजने का खयाल तक परेशान करने वाला लग रहा था। कामवाली का चेहरा उतर गया पर मुझे परवाह नहीं थी। मेरा मन तो पूर्वा में डूबा था। कहीं उसका बच्चा नींद से जागकर माँ को खोजता, रो तो नहीं रहा होगा? वह तो खैर चंडीगढ़ की ट्रेन में बैठी अपने ब्रॉस से गप्पे लड़ाती, खाती-पीती हँस रही होगी। शायद मेरे पति को उसे समझाना चाहिए था कि वह नहीं जाए, पर अगर वे उसे साथ ले जाने को गलत मानते, तो खुद ही उसका टिकट न कटाते। तो क्या मैं जो बेटी के छोटी होते, सिर्फ और सिर्फ उसी में डूबी रही, कभी अपना खयाल तक न रख पाई, वह गलत था? क्या मेरे पति को यही अच्छा लगता कि बेटी की ढंग से देखभाल हो, चाहे न हो, मैं भी पूर्वा की तरह बनी-ठनी, हँसती- घूमती रहूँ - बच्चे की जरूरतें, उसका अधिकार, माँ का कर्तव्य जाए भाड़ में... ऑफिस जाने के साथ-साथ, ब्यूटी पार्लर, जिम जाती रहूँ और पति को पूरा समय देने के बाद बचा-खुचा समय ही बच्चे को दूँ?? हाँ, तय है, उन्हें ऐसी ही पत्नी चाहिए थी, जिसके अंदर की माँ पर, उसके अंदर की पत्नी, प्रेमिका, हावी रहे... उनकी पसंद तो हमेशा से

ऐसी ही महिलाएँ रही हैं, जाने क्यों मुझ जैसी से शादी कर ली! मेरा मन खट्टा हो गया।

पर क्या महिला के अंदर की सेवा भाव और वात्सल्य से ओतप्रोत मदर तेरेसा सचमुच मर रही है?? उसके अंदर की निरंतर मरती मदर तेरेसा पर जाने-अनजाने कोई पामेला बोर्डेस, कोई मर्लिन मुनरो हावी हो रही है? एक महिला खुद को एक समर्पित, दयालु, केयरिंग, जिम्मेदार माँ और पत्नी बनाने की बजाय खूबसूरत, रिझा-लुभा सकने वाली प्रेमिका बनाने पर ज्यादा जोर दे रही है?? क्या पुरुषों की पसंद ऐसी महिलाएँ ही नहीं बनती जा रहीं? क्या यह सच नहीं कि हर पुरुष को चाहिए लटके-झटके दिखाने, हाव-भाव परोसने, लुभाने और प्रशंसा के पहाड़ पर चढ़ा देने वाली एक प्रशंसिका, एक प्रेमिका - चाहे पत्नी के रूप में, चाहे पीए, जूनियर या किसी और की पत्नी के रूप में... शायद हाँ। मेरे मिडिल एज पति का, पत्नी के वैल्यू सिस्टम को धता बताते, एक ऐसी ही कमउम्र महिला के साथ घूमने चले जाना, जिसके अंदर की माँ को, मनोरंजन की इच्छा से भरपूर आधुनिका ने छा लिया है, तो यही सिद्ध करता है। मैं कई बार इस बारे में बहस छेड़ना चाहती थी कि क्या सही है, क्या गलत! पर पति मेरे हर तर्क पर चुप थे।

वे पूर्वा को बहुत पसंद करते हैं और पूर्वा भी उनकी घोर प्रशंसिका है, तो जाहिर है कि अपनी उस पत्नी का पूर्वा की आलोचना करना उन्हें कैसे पसंद आता, जिसके पत्नीपने पर अक्सर एक माँ हावी हो जाती थी। 'उसे दुविधा है। हो सकता है, वह नहीं जाए। उसका जाना फिफ्टी-फिफ्टी है' - वे हफ्ते भर पहले से पत्नी को दिलासा दे रहे थे ताकि वह ज्यादा परेशान न हो... वे शायद पत्नी के किसी तर्क का सामना करना नहीं चाहते थे, चाहते नहीं थे कि पत्नी इस बात से परेशान हो कि वे एक आधुनिका महिला कुलीग के साथ अकेले यात्रा पर जा रहे हैं। पर मुझे अंदर से पता था कि उसका जाना तय है। वह जाना चाहती है। वह जाएगी। शादीशुदा होते हुए और माँ होते हुए भी, पति या बेटे के लिए रुक जाने वालों में वह नहीं। परिवार या बेटे के लिए अपनी खुशी छोड़ देने या मन मार लेने वालों में वह नहीं। मेरे पति को भी निश्चित पता था कि वह जा रही है पर पत्नी की जिरह से बचने के लिए वे यह सब कह रहे थे।

खैर, भागकर बस पकड़ ली और अपनी किस्मत से सीट भी मिल गई। यह तो बगल में बैठी महिला ने विश किया, तब जाकर ध्यान आया कि आज महिला दिवस है। फिर मोबाइल के मैसिजेस पढ़े। महिला के गुणों के बारे में सुंदर-सुंदर वाक्य लिखे थे कि किस तरह वह घर की धुरी है और उसके बिना हर घर, हर दिल, हर अहसास, हर पल अधूरा है। एक में लिखा था कि महिला ईश्वर के प्यार का प्रतिमान है। वह दिल से

देखती और आँखों से महसूस करती है। वह एक ऐसा बैंक है, जहाँ सारे परिवार के दुख-दर्द, चिंताएँ और भय जमा रहते हैं। वह सीमेंट हैं, जो परिवार को जोड़े रखती है और उसका प्यार जिंदगी भर खत्म नहीं होता।

पर मुझे तो महिला दिवस की खुशी से ज्यादा मेल ऐटिट्यूड पर गुस्सा था, जिसके कारण यह दिन मनाने की नौबत आई। यह महिला के गुणों के बयान से ज्यादा उसके अधिकारों की लड़ाई का दिन था और मैं आत्ममुग्धता में उलझने की बजाय, पुरुषों की सोच बदलने पर ज्यादा जोर देना चाहती थी, इसीलिए मैंने हर एसएमएस का जवाब यह लिखकर दिया कि चलो मनाएँ कि पुरुष की सोच, उसके ऐटिट्यूड में ऐसा परिवर्तन आए कि दुनिया भर में हर दिन महिला दिवस हो जाए और इसे अलग से मनाने की कोई जरूरत नहीं रह जाए। पता था कि कोई एप्रिशिएट नहीं करेगा।

मुझे अब गुस्सा आने लगा था। एक पूर्वा थी जो अपने पति और नन्हें बेटे को छोड़कर मेरे पति के साथ यात्रा कर रही थी और जाहिर है, महिला दिवस पर एक आजाद महिला की तरह, ठहाके लगाती, गप्पें मारती एन्जॉय कर रही थी। एक मैं थी, जो महिला की आजादी का मतलब उसकी आर्थिक, भावनात्मक और वैचारिक आजादी से लगाती थी, पुरुषों से बराबरी और दोस्ती का रिश्ता चाहती थी - चाहे पति ही क्यों न हो, पर हकीकत में गैर-बराबरी का जीवन जीती, घर-गृहस्थी-बच्चे की जिम्मेदारियों में उलझी, बैल का जीवन जीती थी... पति, जो महिलाओं की हर तरह की आजादी के समर्थक थे, मदद के नाम पर सिर्फ लिप सर्विस देते थे। उन्होंने शादी तो मुझ जैसी से कर ली थी पर उनकी पसंदीदा महिलाओं की लिस्ट में कई ऐसी महिलाएँ थीं, जिनके लिए आजादी का मतलब सजने-धजने, पुरुषों को लुभाए रखने, विवाह की वचनबद्धता न निभाने की आजादी से लेकर किसी भी कीमत पर करियर को पहली प्राथमिकता देते हुए, करियर की खातिर बॉस से फ्लर्टेशन करने तक की आजादी से था... पति जोर देकर कहते थे कि यह उनका निजी मामला है। महिला को अधिकार होना चाहिए कि पति पसंद न हो तो वह बाहर प्यार करे, किसी और का पति पसंद हो तो खुलकर इजहार करे... महिला को आजादी होनी चाहिए कि वह अपने शरीर का जैसा चाहे इस्तेमाल करे... उनकी ऐसी सोच मेरे लिए उसी तरह खतरा थी, जिस तरह मेरी यह सोच उनके लिए कि शादी पसंद न हो तो महिला को शादी छोड़ आगे बढ़ जाने की हिम्मत दिखानी चाहिए।

यह सब याद करके तो मेरा गुस्सा और बढ़ गया। नहीं, मुझे यह संदेह नहीं था कि पूर्वा बगल के कमरे में रहती हुई, आज रात अपनी देह का जैसा चाहे वैसा इस्तेमाल करने वाली है... बल्कि मुझे तय-सा था कि ऐसा कुछ भी होने वाला नहीं, फिर भी...

अचानक मन में शंका उठी, कि पूर्वा के पति को कोई चिंता क्यों नहीं कि इस तरह उसकी पत्नी, अपने बॉस के साथ एक दिन और रात अकेली रहने वाली है? क्या उसे अपनी पत्नी पर अटूट भरोसा है या फिर मेरे पति पर?

मैं ऑफिस पहुँच गई। सब ओर शांति थी। महिलाओं ने एक दूसरे को महिला दिवस की बधाई दे दी। मैंने अपनी इच्छा दुहरा दी कि महिला की आजादी, उसकी खुशी तभी संभव है जब पुरुषों के रवैए में परिवर्तन आए... वरना वह घर-बाहर-बच्चे सब सँभालने की कोशिश में हलकान होती, सुपरवुमन बनने की असफल कोशिश करती, डिप्रेस्ड होती जिएगी... सभी महिलाएँ आखिर चुप क्यों हो जाती हैं, जब भी मैं ऐसी बातें कहती हूँ? क्या वे अपनी सोच तक में पुरुषों के यानी अपने पति, पिता, भाई या समाज के दूसरे पुरुषों के विरुद्ध होते डरती हैं? महिला दिवस एक फॉर्मेलिटी है। इस दिन एक-दूसरे को बधाई देने का रिवाज है, तो दे देती हैं।

सुनीता ने कहा कि 'पति नाराज हो रहे थे क्योंकि उनका नहाने का साबुन खत्म था और मैं मँगवाना भूल गई थी। वे नाराज होते रहे और मैं मुस्कुराती सुनती रही। पतियों की नाराजगी एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल न दो तो रोज लड़ाइयाँ ही होती रहेंगी। ये सब जनम से ऐसे ही होते हैं - बासी टाइप। हर वक्त इन्हें मन का सब कुछ तैयार चाहिए... पर मेरे पति वैसे इतने अच्छे हैं कि वे मुझे एक थप्पड़ भी लगा दें तो मैं बर्दाश्त कर लूँ। नहीं, कभी हाथ उठाया नहीं... कब्भी नहीं। मकान मेरे नाम, बैंक की हर एफडी - मेरे नाम...' मेरे अंदर कुछ खौलने लगा पर चुप रही।

'आप भी हद हैं', श्रिया मुझसे कह रही थी - 'हर वक्त झाँसी की रानी बनी, लड़ने-भिड़ने को तैयार। पुरुषों से बराबरी की बात ही क्या है? वे बाहर सँभालते हैं, हम अंदर!' 'माने?' मैंने छेड़ा। 'तुम घर से बाहर नहीं निकलती, नहीं कमाती या कि बाजार नहीं करती, बच्चे के स्कूल नहीं जाती, सब्जी नहीं लाती...' 'अरे नहीं, यह सब करती हूँ पर जब बाहर लड़ना-भिड़ना हो, कार वाले से उलझना हो या पड़ोसी से, तो आखिर पतियों का भरोसा ही तो रहता है।' 'क्यों तुम कार सर्विस कराकर क्यों नहीं ले आ सकती?' मैंने पूछा - 'ले आ सकती हूँ, ले आती रही भी हूँ, फिर भी... भलाई इसी में है कि हम उन्हें यह अहसास दिलाए रखें कि कई काम करने को हम उनपर आश्रित हैं और उनके अधीन हैं... और उनका दिल जीते रखें... फिर देखिए कितना प्यार करते हैं!' 'शर्म करो, इलेक्ट्रॉनिक इंजीनियर साहिबा... हमारी लड़ाई या टक्कर पुरुष से नहीं है पर हम उनकी ही तरह, बराबरी से ग्रो करने, मनलायक जीवन जी सकने की स्वतंत्रता चाहते हैं। पुरुष को रिझाए, लुभाए रखने के ये लटके-झटके बंद क्यों नहीं करती? ... मैं चाहती हूँ कि मैं महिला होने के सभी गुणों को एन्जॉय करती, एक पूरी

महिला बनी जिऊँ, शादी में बराबरी का रिश्ता बनाऊँ। पति-पत्नी में कोई बड़ा, न छोटा - दोनों बराबर।' 'इंप्रैक्टिकल सोच है, चलती नहीं है।' वह इतराकर बोली।

महिला होने को सेलिब्रेट करो, तुम गुणों की खान हो, तुम ताकतवर हो, तुम आसमान छू आ सकती हो... तुम फलाना हो, ढिमकाना हो... ये हो, वो हो... शिट्... मुझे तो सारे चेन एसएमएस पढ़-पढ़कर गुस्से पर गुस्सा आ रहा था क्योंकि भेजने वाली सारी महिलाएँ वो थीं जो गैर-बराबरी का रिश्ता जीती थीं, आवाज नहीं उठाती थीं और इसे ही सही मानती थीं। फिर भी विमिंस डे पर जाने क्यों मुझे मैसिज पर मैसिज कर रही थीं। और एक पूर्वा थी, मैसिज करने की बजाय आजादी का साक्षात लुत्फ उठा रही थी...

मैंने थोड़ी देर के लिए काम एक ओर करके, अखबार उठा लिए। प्रसिद्ध अभिनेत्री रानी मुखर्जी को महिला होने पर गर्व था और वह मानकर चल रही थी कि शादी होने के बाद अपनी माँ की तरह वही घर की बॉस होगी। उसका कहना था कि महिला प्रधान फिल्में उतना बिजनेस नहीं कर पातीं, जितना पुरुष प्रधान फिल्में, इसीलिए जायज है कि अभिनेत्रियों को अभिनेताओं से कम मेहताना मिले... विमिंस डे की सामग्री के रूप में अखबारों ने तरह-तरह के मटीरियल दिए थे, खास-खास साइंटिस्ट महिलाओं की जानकारी से लेकर, देश में महिलाओं के स्वास्थ्य और शिक्षा के चिंताजनक स्तर तक... महिलाओं जागो और सपने साकार करो... देखो, इसने, उसने और किस-किसने क्या-क्या कर दिखाया... हुँह। अखबार के विज्ञापनों में नंगी, अधनंगी भारतीय लड़कियाँ सपने साकार करती, किसी-न-किसी विज्ञापन का हिस्सा बनी, भाव-भंगिमाओं से देह दिखाती, हिंसा या सेक्स परोसती हँस रही थीं।

शकीरा पूरी नंगी, सिर्फ वेजाइना ढके परफॉर्मेंस दे रही थी और पुरुष उसके दीवाने, पागल हुए जा रहे थे। भारतीय अभिनेत्रियों ने चुंबन, सेक्स और स्नान दृश्यों के फिल्मीकरण में अपना टैलेंट खुलकर दिखाया था। महिलाएँ लेखिकाएँ, मैनेजर, प्रशासक - सब बन, छा रही थीं। क्या वे धीरे-धीरे आजाद हो पा रही थीं? हाँ, हो सकता है, आखिर तभी तो पूर्वा मेरे पति के साथ मस्ती कर रही थी और उसका बेटा- अब तो मुझे तय जैसा लग रहा था - घर पर माँ को खोजता रो रहा था। पर जब उसके पति को ही कोई शिकायत नहीं कि पत्नी अपने सीनियर के साथ बेटे को छोड़कर घूम क्यों रही है, तो आखिर मैं क्यों अपना दिमाग खराब कर रही थी? मेरी सोच तो पूरी तरह बेमानी थी... मुझे क्यों शिकायत थी कि वह बेटे को साथ क्यों नहीं ले गई! कहीं इस शिकायत के पीछे कोई और कारण तो नहीं? मैंने खुद को टटोलने की कोशिश की... पर कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिला।

आह, महिला के अंदर की महिला लगातार मरती क्यों जा रही थी आखिर! वह कम इनसान होती जा रही थी... वह सिर्फ और सिर्फ देह होती जा रही थी। ब्यूटी पार्लर उसे बाहरी सुंदरता हासिल करने की होड़ में जिताने की ठाने बैठे थे और वह खुशी-खुशी उस दौड़ में शामिल थी। अंदर की सुंदरता? यह क्या होती है भला, जब आपके जीवन में उपस्थित हर पुरुष आपको सजी-धजी, उघड़ी, अखबारों के पेज थ्री पर छपने वाली महिलाओं की तरह देखना, बरतना चाहता हो... मैंने अखबार एक ओर रख दिए। मेरा दिल डूबने लगा। पेड़-पौधे, दूब, पत्तियाँ सब लगातार मर रहे हैं, रिश्ते भी... और अंदर-अंदर महिला भी।

फर्जीवाड़ा है सब - प्रेम में, रिश्तों में बाजारूपन घुस आया है।

फर्जीवाड़ा है यह महिला दिवस - महिलाओं की सोच में कोई परिवर्तन नहीं आया है।

मैंने कुर्सी पर सर पीछे टिका लिया और आँखें बंद कर लीं। सौ साल हो गए महिला दिवस मनाते, लड़ते-भिड़ते, पर कुछ है जो बदलता ही नहीं है... मैं गिरफ्त में हूँ और छटपटा रही हूँ। मैं स्पेस में जा रही हूँ और गाँवों में डायन बताकर झाड़ से पीटी जा रही हूँ। मैं बोर्ड रूम में हूँ और मैं कोख में मारी जा रही हूँ। मैं दिमाग बनना चाहती हूँ पर लोग मेरे दिल का वास्ता दे-देकर मुझे देह ही बनाए रखना चाहते हैं... मैं बस थोड़ा-सा, सिर्फ अपने लिए पाना चाहती हूँ तो वे मुझे याद दिला देते हैं कि मैं तो सैक्रिफाइसेस के लिए बनी हूँ।

दोपहर होने को आई। मैंने अखबार उठाकर एक ओर रख दिए। नहीं, मैं रानी मुखर्जी से सहमत नहीं थी कि हिरोइन को हीरो से कम पैसे लेना जायज है... खुद रानी की नायिकाप्रधान फिल्में इसका उत्तर थीं जिन्होंने अच्छा बिजनस किया था। उसे अधिकार था कि बराबर का पैसा ले, अपनी लड़ाई जारी रखे, सभी बिकाऊ नायिकाओं का एक समूह बना ले और विद्रोह का बिगुल बजा दे... खैर, हमारे ऑफिस में ऐसा नहीं था कि हमें पुरुषों से कम पैसा मिलता हो, तो मैं रानी की तरह गैर-बराबरी का शिकार नहीं थी। यह सोचकर मुझे अच्छा लगा। पर इस अहसास ने फिर से घेर लिया कि पूर्वा मेरे पति के साथ एन्जॉय कर रही थी और मैं यहाँ तरह-तरह के विचारों, अंदर की बहसों में उलझी थी... लानत है मुझ पर!!

इंटरकॉम बजने लगा, उसी समय लता भी सामने आकर खड़ी हो गई। मैंने उसे बैठने का इशारा किया और फोन उठा लिया। 'मैम, आज का लंच एक साथ इकट्ठा होकर... ज्यादा नहीं सिर्फ 150 का कलेक्शन... और हमारी क्लास फोर स्टाफ के लिए फ्री...' तुहिना कह रही थी। कुछ सोचने या तर्क करने का समय नहीं था, क्योंकि आधे घंटे में

सारी तैयारी करनी थी। कलेवा को ऑर्डर करना, सीजीएम से कॉन्फ्रेंस रूम के उपयोग की सहमति लेना... पुरुष सहकर्मियों को हवा तक लगने देने से पहले, अपनी एका दिखाते हुए लंच टाइम में मीटिंग और ईटिंग का कार्यक्रम संपन्न कर लेना... समय की नजाकत भाँपते हुए मैंने लता को पैसे तुरंत पकड़ा दिए। वह बिना एक शब्द बोले मुस्कुराती चली गई।

'सखियों, मेरी सखियों... आप सबों को बिना विरोध एक साथ लंच और विचार- विमर्श का मेरा कार्यक्रम मान लेने के लिए शुक्रिया... इतनी सारी रंग-बिरंगी मेरी सखियाँ, मुस्कुराती यहाँ बैठी हैं, महिला दिवस पर अपने विचार व्यक्त करने वाली हैं... और तो और, सोनाली मैम भी बिना विरोध यहाँ आ गई हैं, जो मंच से बड़ी-बड़ी बातें बोला करती हैं।' मेरा नाम अलग से क्यों घसीट रही हैं शीला मैम, मुझे खीझ हुई... वे कह रही थीं कि 'मैं तो खुश हूँ, खुश हूँ और बहुत खुश हूँ, आप सबों के साथ से...' हमेशा की तरह कुछ ज्यादा ही सजी-धजी, शिफॉन की साड़ी और लो कट ब्लाउज में अपनी भारी छातियों का शान से प्रदर्शन करती शीला मैम, जिन्हें पुरुष सहकर्मियों द्वारा मोटी काली भैंस कहे जाने पर मुझे हमेशा से आपत्ति थी, अपने सदा के नाटकीय अंदाज में बोल रही थीं। 'अगले साल मैं यहाँ नहीं रहूँगी, रिटायरमेंट के बाद कहाँ रहूँगी, पता नहीं... पर आप सबों का ये साथ मैं हमेशा याद करूँगी सखियों... इस ऑफिस में मैंने पैंतीस साल गुजारे, बस कुछ महीने और गुजारने हैं। महिलाओं की प्रेजेंस इस ऑफिस में मुझ से ही शुरू हुई, उसके पहले तो सिर्फ पुरुष थे, तो मैंने एक लंबा सफर तय किया... और आज आप सब यहाँ बिना किसी पुरुष के विरोध के, बैठी खा रही हैं, बोल रही हैं, तो मुझे कितना अच्छा लग रहा है, बयान नहीं कर सकती... हालाँकि मुझ पर तोहमत भी बहुतेरे लगे... क्या सच था, क्या झूठ, मैं नहीं बोलूँगी।

यह तो आपके जमीर पर है कि आप सोचें कि क्या इस ऑफिस की एकमात्र महिला के लिए यह संभव था कि बॉस डिक्टेशन लेने को देर तक रोके, तो ना कर दे... मीटिंग्स के मिनट्स बनवाने को बाहर साथ ले जाए, तो न जाए... तो मैं तो जाने किन-किन उपमाओं से नवाजी गई, कितना धिक्कार मेरे लिए सोनाली मैम के मन में होगा, जिनका इस ऑफिस में आने के बाद एक ही एजेंडा चलता रहा है - विरोध, विरोध और विरोध... आप क्या सोचती हैं सोनाली मैम कि मुझे विरोध करना था, दूसरे शहर साथ नहीं जाना था... सी.आर. खराब करवाकर परमानेंट नहीं होना था या फिर अपने आप ही नौकरी छोड़ देनी थी? ...तो सोनाली मैम इस पर अपने विचार व्यक्त करेंगी। वैसे अब तो जमाना बदल गया है... किसी को नौकरी करते होने के लिए किसी कॉम्प्रोमाइज की जरूरत नहीं...'

मेरे माइंड का स्विच कुछ क्षणों के लिए वर्तमान से ऑफ हो गया। भूल गई मैं कि मैं वहाँ ऑफिस की सजी-धजी महिलाओं के बीच बैठी, खाना खा रही हूँ... सोचने लगी कि सच न होता तो शीला मैम खुद को इतना डिफेंड क्यों करतीं? ...तो क्या सचमुच उनका कई बॉसों के साथ देह का रिश्ता रहा और वे आउटस्टैंडिंग सी.आर. के साथ आराम से करियर की सीढ़ियाँ चढ़ती सीनियर मैनेजर के पद तक पहुँच गईं?

'अरे दिव्या, यहाँ तू कोई पिअन-विअन नहीं है', लता कह रही थी, 'आराम से हमारी बगल में कुरसी पर बैठकर खा... उधर कोने में बैठने की कोई जरूरत नहीं।'

'हमारे लिए क्या महिला दिवस दीदी, रोज की तरह ही सुबह साढ़े चार उठकर जल्दी-जल्दी खाना-वाना बनाकर, पति-बच्चों को तैयार करवाकर भेजा, फिर खुद बिना नाश्ता किए, जैसे-तैसे नहाकर आई... जब से आई हूँ, ऑफिस में काम पर लगी हूँ, जरा बैठने की फुर्सत नहीं... फिर बस में खडी-खड़ी, वापस जाऊँगी और रसोई में लग जाऊँगी। रात के ग्यारह बारह बजे तक काम खत्म करके बिस्तर पर पहुँचूँगी तो पति धर दबोचेगा। ना करने पर पीटेगा', वह बिना संकोच बोली।

'तो हमारी जिंदगी कौन-सी अलग है... हम सबों का वही हाल है। घर के काम, ऑफिस के काम, बच्चों के होमवर्क, बाजार... सभी महिलाएँ करती हैं यही सब... पर हाँ, कमाती है तो कुछ तो अपने मन का खरीद सकती है, खा सकती है', लता ने समझाया।

'हाँ, दीदी, वह तो है... पर मैं कह रही थी कि आज महिला दिवस है, तो हमारे लिए आज के दिन और दूसरे किसी दिन में अंतर क्या हुआ?' दिव्या ने फिर पूछा।

सवाल बेढब था, सही था, तलवार की तरह सर पर लटका था।

'अरे, सौ साल हो गए, हमें यह दिन मनाते... महिलाओं को खुशी मनाते कि हम एकजुट हैं, साल में एक दिन हमारा है', तुहिना बोली तो दिव्या मूर्ख की तरह उसका मुँह ताकती रही।

'अच्छा, क्यों न मुद्दों पर आएँ', मैंने बात शुरू की। 'एक साथ खाना, विचार-विमर्श करना तो ठीक है, पर आज का दिन असल में अपने अधिकारों की लड़ाई का दिन है, तो क्यों न इसी दिन के बहाने हम भी अपने जरूरी संघर्षों की शुरुआत करें! एक ज्वायंट पिटीशन दे दें कि हमें भी चाइल्ड केयर लीव मिले, एक रेस्ट रूम हो ऑफिस में, सिर्फ पुरुषों को नहीं, कभी हमें भी बाहर अच्छी जगहों पर पोस्टिंग मिले...

मैटरनिटि बेनेफिट रुल अपने ट्रू स्पिरिट में लागू हो, हमें ज्यादा फ्रीक्वेंटली ट्रेनिंग पर भेजा जाय, क्योंकि घर- बाहर - बच्चों की तिहरी जिम्मेदारियों ने हमें इस लायक नहीं रखा कि ऑफिस के अलावा हम लिखाई-पढ़ाई करके पुरुषों के बराबर इन्फॉर्म्ड रहें, तमाम जानकारियाँ रख पाएँ... हेड ऑफिस से यह मुद्दा उठाया जाय, इस ऑफिस में बात की जाय...'

'लेडीज टॉयलेट का हाल सुधारा जाय', दिव्या मेरी बात काटती बोली।

'हाँ, सखी सोनाली... यह सब करो न...', शीला मैम ने उसाँसें भरते कहा। 'बस तुम्हीं तो आशा हो इस ऑफिस की... तैयार हो मन से इस बात के लिए कि विरोध करेंगे, अन्याय नहीं सहेंगे, चाहे इसका जो परिणाम हो... पति भी अच्छा मिला होगा तुझे, तभी यह सब कर पाती है। भरोसा होगा कि नौकरी छूट भी गई, तो पति कुछ कहेगा नहीं, ताने नहीं देगा, पैसे-पैसे को तरसा नहीं देगा...'

'मैं तो कोई रिस्क या विरोध मोल नहीं ले सकती। घर की इकलौती हूँ, शादी के समय यह तय हो गया था कि पिता नहीं हैं, इसीलिए माँ को साथ ही रखूँगी, तो अगर नौकरी गई, तो माँ को किस मुँह से साथ रखूँगी, कैसे खिलाऊँगी, कैसे इलाज कराऊँगी उनका?', सुदीप्ता बोली।

'मेरी भी शादी इसीलिए कम दहेज में हो गई कि मैं कमाती हूँ... पति प्यार करते हैं कि पत्नी घर की सारी जिम्मेदारियाँ सँभालती हुई, पैसे भी घर लाती है... तो नौकरी छूट गई तो क्या होगा, क्या जाने... रिप्रेजेंटेशन पर साइन तक तो ठीक है, पर उसके आगे हेड ऑफिस से पंगा लेना, बॉसों से बहस करना वगैरह... ना बाबा ना... सब जैसे चल रहा है, वैसे ही रिटायरमेंट तक चल जाए, तो अहो भाग्य', तुहिना बोली।

'मैं तो वैसे ही विडो हूँ। बेटे के चक्कर में चार बेटियाँ हो गईं, तब जाकर बेटा हुआ तो पति चल बसे। उनकी जगह काम पर लगी हूँ। किसी तरह पाँच बच्चों को पाल रही हूँ... किसी झंझट में नहीं पड़ना मुझे... किसी तरह बच्चे सब किनारे लग जाएँ', ममता मैम बोलीं।

इस सबके बीच एकाएक नेहा मेरी ओर मुँह करके बोली - 'मैम आप ठीक कहती हैं। हमें अपने उन अधिकारों के लिए लड़ना ही चाहिए, जो कानूनन हमारा हक हैं, पर हमें मिलते नहीं। मैम, रिप्रेजेंटेशन देना ही चाहिए। साथ ही क्यों न समय-समय पर हम किसी ऐसी हस्ती को बुलाएँ, उनके अनुभव सुनें, जिन्होंने अपने क्षेत्र में कुछ कर दिखाया है...'

'हाँ, यह तो ठीक है', अनीता तुरंत बोली। 'इससे हमारा मोटिवेशन बढ़ेगा। बल्कि बेकार में रिप्रेजेंटेशन बनाकर सर फोड़ने से यह ज्यादा अच्छा है। पता तो है कि इस ऑफिस में कुछ होना-हवाना है नहीं... यह किसी को बुलाने वाली बात सही है। सोनाली मैम, आपकी तो पहचान है, किसी न किसी को हर महीने बुला लिया कीजिए न... ऑफिस के फंड से कुछ माँगेंगे कि उन्हें कन्वेन्स के नाम पर कुछ पैसे दे दें और खिला-पिला दें...'

'मुझे तो लगता है कि सोनाली मैम सही कह रही हैं', रीना बोली। 'भले ही अब मैटरनिटि बेनेफिट से मुझे कोई लाभ नहीं होने वाला, चाइल्ड केयर लीव से भी नहीं क्योंकि बच्चे अठारह पार कर चुके, मैं सोचती हूँ कि यह हमारी जिम्मेदारी है कि ऑफिस की अगली पीढ़ी की महिलाओं के लिए कुछ कर जाएँ, उनका हक उन्हें दिलाने की कोशिश करें...'

'मैं ज्यादा सोच नहीं पाती, पर रीना मैम और सोनाली मैम जो भी कहती हैं, ठीक ही कहती हैं, तो मैं भी आप सबों के साथ हूँ', आशा बोली।

इक्कीस में से सिर्फ तीन... सिर्फ तीन चाहती हैं कि कुछ हो, हक मिले, न मिले; माँगने की, गलत का विरोध करने की शुरुआत तो हो...

मैं बाकी सबों का मुँह ताकती सोचती रही। जब करना कुछ है ही नहीं, इसी तरह बिना विरोध, घर-बाहर असुविधाएँ सहते जीते रहना है तो फिर इस तरह इकट्ठा होकर साथ खाना खा लेने से क्या हासिल... किसी महिला हस्ती की बात सुन लेने से क्या हासिल, जब आप उनकी राह चलने, संघर्ष करके कुछ पाने के रास्ते चलना ही नहीं चाहतीं...आप सबों का दिमाग तो शिकंजे में ऐसे कसा है कि विरोध की बात सोचते तक घबराती हैं, तो महिलाएँ आगे कैसे आएँ... बराबरी कैसे पाएँ...

'देखिए', मैंने प्रकट कहा। 'सही है कि महिलाएँ सिर्फ देह बनी जीती रहने को सदियों से मजबूर की गई हैं... बचपन से मायके में दो हाथ बनी जीती हैं। फिर शादी हो जाती है तो दो हाथ के साथ, एक कोख, एक योनि भी बन जाती हैं... उनका दिमाग भी देह का एक हिस्सा बना, अपना इतना भर उपयोग करता रहे कि वे मिट्टी की माधो बनी, कोई नौकरी करती, पति के घर पैसा लाती रहें, तो पति खुश... पर जैसे ही वे सोचने लगती हैं, दिमाग का इस्तेमाल घर-बाहर, अपने हकों के लिए करने लगती हैं, आँख की किरकिरी बन जाती है - खासकर पति की आँख की, ससुराल में सबों की आँख की... कहने लगते हैं सब कि अरे, यह तो विद्रोही है, लड़ाका है, बराबरी की बातें करती है, घर के कामों का जिम्मा अकेले लेती कतराती है, वगैरह... तो मेरा मकसद है कि

आप सब सोचना, गलत का विरोध करना सीखें...' मैं सोच रही थी कि आगे क्या कहूँ कि अचानक से शीला मैम बेचैनी से मेरी बात काटती बोल उठीं।

'चलो सखियों, देर हो रही है। लंच टाइम खत्म हो चुका। मैंने यह मीटिंग बुलाई है, तो समय से इसे खत्म कर देना मेरी जिम्मेदारी है, ताकि मुझ पर यह तोहमत न लगे कि मैंने महिला दिवस के बहाने ऑफिस का समय बरबाद किया है।'

मैं तुरंत उठ गई। लगा कि मुझे तो यहाँ आना ही नहीं चाहिए था। इस समूह से निजात चाहिए थी मुझे - इस न सोचने वाले समूह से। एक ये सब थीं, मेरे ऑफिस की महिलाएँ, गैर-बराबरी के जीवन को समर्पित भाव से, एन्जॉय करती जीती... और एक पूर्वा है। बहस नहीं करती, सीधे जो चाहिए होता है, ले लेती है, कर दिखाती है। बच्चे को पति के सर करके, घूम रही है न आराम से बॉस के साथ... भाड़ में जाएँ महिला दिवस की ये बहसें... मुझे अच्छा भी लगा और बेचैनी भी होने लगी। आखिर मैं कभी क्यों ऐसा नहीं कर पाई? बस बहसें करती रही पति से, कभी मन का जी नहीं पाई... आखिर हमारी पिअन दिव्या में और मुझमें क्या अंतर रहा तब! वह भी दिन-रात काम से पिसती जीती है, मैं भी... हाँ, मैं ज्यादा कमाती हूँ, पति से बहसें कर लेती हूँ, पिटती नहीं हूँ... पर मन का जी तो नहीं पाती न! क्या मैं कभी बेटी से हटकर सोच पाई, मन का कुछ कर पाई, अकेले घूम पाई या अभी रोक पाई पति को कि पूर्वा के साथ यूँ न जाएँ, यह मेरे दिल को अच्छा नहीं लगेगा...

अचानक मुझे इस तथ्य ने फिर से घेर लिया कि पति एक खूबसूरत जूनियर लेडी कुलीग के साथ अकेले हैं। मुझे खीझ हुई। यह भी नहीं कि पहुँचकर पत्नी को एक फोन ही कर दें। क्या पता पूर्वा ने पति को फोन किया या नहीं, और उसे कोई फर्क पड़ा या नहीं? मैंने उन्हें मोबाइल पर फोन लगाया। उन्होंने फोन उठा तो लिया पर तुरंत कहा कि वे बहुत बिजी हैं। गाड़ी खड़ी है उन दोनों समेत कइयों को घुमाने ले जाने, और वे मुझसे बात करने को रुक नहीं सकते। मेरा दिल डूब गया। कइयों को? कि अकेले उन दोनों को? ऐसा तो कोई प्लान पहले से था नहीं कि वहाँ जाकर शादी के घर रहने की बजाय पूर्वा के साथ चंडीगढ़ घूमेंगे... खैर, अब मैं कर ही क्या सकती थी, कल उनके लौट आने का इंतजार करने की बजाय! मुझे पूर्वा के पति पर खीझ होने लगी। अजीब आदमी है, पत्नी को इजाजत दे दी कि नन्हें बच्चे को छोड़कर बॉस के साथ घूमे... पता नहीं, ये सोच की आधुनिकता है या लचीलेपन के नाम पर रिश्ते का बिखराव... एक दूसरे को स्पेस देना है या कि उनके रिश्ते में पजेसिवनेस है ही नहीं, इंटिमेसी है ही नहीं... शायद उनके रिश्ते वैसे नहीं, जैसे मेरी समझ से होने चाहिए... मैं कभी नहीं गई न, बेटी को छोड़कर कहीं भी नहीं गई कभी, मूवी देखने तक नहीं... भले ही बेटी की

परवरिश में पिता बनकर मेरे पति ने साथ निभाया हो, माँ तो फिर माँ ही होती है, हर बच्चा पहले माँ को ढूँढ़ता है किसी भी जरूरत के लिए। अजीब है ये आधुनिकता, जो मनोरंजन की निजी जरूरतों को बच्चे की जरूरतों पर प्राथमिकता देती है!! अजीब है आजकल के युवाओं की मानसिकता कि पत्नी को आराम से बॉस के साथ अकेले घूमने भेज, खुद बच्चा सँभालते चैन नहीं खोते...

पर काम तो करना ही था। काम छोड़कर सोचना भी मेरे सिद्धांतों के खिलाफ था। ऑफिस छोड़ने से पहले ही सारे काम समाप्त कर देने की अपनी आदत आज क्यों छोड़ती! मैंने काम पर ध्यान लगाया और सब कुछ भूल गई। बीच में हर रोज की तरह बेटी को एक फोन जरूर लगाया। यह जानना जरुरी था कि वह सुरक्षित घर पहुँच गई और उसकी परीक्षा अच्छी हुई।

शाम को घर लौटते भी वही सब सोचती रही। पूर्वा, उसका बच्चा, बच्चे को बहलाता पति, बॉस के साथ दूसरे शहर में एन्जॉय करती एक आधुनिक महिला... मेरे ऑफिस की महिलाएँ, उनकी सोच, मेरी सोच।, मेरे पति की सोच, महिला दिवस की सार्थकता... मेरी बेटी का भविष्य...

शाम को कामवाली मुँह फुलाए आई, उसे मैंने छुट्टी जो नहीं दी थी। नहीं, उसे महिला दिवस वगैरह की न तो कोई जानकारी थी, न इससे मतलब... बस एक शाम घूमने, बाजार करने को छुट्टी चाहिए थी या फिर हो सकता है कि बस आराम करने को... पर मैं तो मानसिक, शारीरिक दोनों तौर पर थकी थी। आज उसे छुट्टी नहीं दे सकती थी। महिला दिवस पर एक महिला के सारी आजादी लेते हुए अपने पति के साथ मौज-मस्ती के अहसास के साथ, अपने ऑफिस की महिलाओं के रवैए ने मुझे वाकई थका दिया था। पर इस सब के बीच वैसे मुझे अफसोस भी हो रहा था कि मैंने खुद को एक सजग महिला मानते हुए भी, कामवाली महिला को आराम के लिए एक वक्त की छुट्टी तक नहीं दी।

रात हो गई। सारे काम पूरे हो गए। दिन का अंत होने को आया। पति का फोन नहीं आया, तो नहीं ही आया। मैं ही क्यों बार-बार फोन करती रहूँ, उन्हें भी तो एक बार पता करना चाहिए था कि घर पर सब ठीक है या नही? मैं बेचैन होने लगी। क्या पूर्वा के पति को भी किसी बेचैनी ने घेरा है या उसे कोई परवाह ही नहीं कि पत्नी क्या करती है?

जरूर उसका बच्चा अब रात को माँ के लिए रो रहा होगा, पर पूर्वा को कुलीग की शादी में हँसते, ठहाके लगाते, विमिंस डे एन्जॉय करते, इस बात का कोई गम नहीं होगा...

और अब तो विमिंस डे जाने वाला है। महिला के अंदर की माँ, पत्नी, हया सब जाने, मरने वाली है... जा रही है। चली गई है, मर चुकी है या फिर वह सब जिंदा हैं और माँ बनी, पत्नी बनी, हया की मूर्ति बनी महिला तब भी अंदर से मरती जा रही है? मेरी सोच फिर से वहीं जा अटकी। 'इस मरती हुई महिला को बचाओ', मैं पति से कहना चाहती हूँ। पर वे तो पूर्वा के साथ हैं। उन्हें तो फर्क भी नहीं पड़ता, मेरी सोच से। सारे के सारे पुरुष, इस अंदर से मरती हुई महिला को ही तो जश्न का सामान बनाना चाहते हैं। तभी तो कोई एक पूर्वा, आजादी की हुलस में, बेटे, पति और घर को पीछे छोड़ निकल लेती है और कोई एक पुरुष, या कई पुरुष इसका बुरा नहीं मानते। तभी तो मेरे ऑफिस की अधिकतर महिलाओं की तरह, खुद को आजाद समझती जीती महिलाएँ, असल में पुरुषों की गुलामी की जिंदगी ही जीती हैं...

मेरे हाथों ने अनजाने पति को फोन लगा दिया। उन्होंने तुरंत उठाया और पूछा - 'सब ठीक तो है? इतनी रात गए फोन कर रही हो?' 'हाँ, बस ऐसे ही' मैंने कहा। 'बिस्तर पर बगल की जगह का खालीपन घूर रहा है न!' वे हँसे। बोले - 'यहाँ बहुत शोर है। खाना-पीना चल रहा है।'

'पूर्वा कहाँ है?' मैंने पूछा। 'यहीं है और कहाँ रहेगी? सजी-धजी गजब ढा रही है... साड़ी और गहने उस पर खूब फब रहे हैं। रोज तो ऑफिस में जींस और कुरते में आती है न! पूरा शहर घूमे दोपहर में। इतना सुंदर शहर और इतना सुंदर गार्डेन कभी नहीं देखा... पूर्वा किसी किशोरी की तरह एन्जॉय कर रही है... और हर थोड़ी देर बाद पति से फोन पर बातें कर रही है। अच्छा, रखता हूँ। इतने पुराने परिचित मिल गए हैं कि...।' 'गुड नाइट' मैंने डूबते गले से कहा। ' गुड नाइट' उन्होंने चहकते गले से कहकर जल्दी से फोन रख दिया।

आवाज के साथ दिल भी डूब गया। मैंने बिस्तर पर लेटकर आँखें बंद कर लीं। ऐसा लगा जैसे मुझे इन फर्जी आधुनिक महिलाओं के हुजूम ने पकड़कर, चारों ओर से घेरकर एक गोल घेरे के अंदर डाल दिया है और मेरे चारों ओर गोल-गोल चक्कर लगाती, वे गा रही हैं, नाच रही हैं, हँस रही हैं... मैं दर्द, बचैनी, असहायता की बेचैनी में डूबती जा रही हूँ। वे कह रही हैं कि 'आज हमारा दिन है - हम नाचेंगे, गाएँगे और खुशी से टल्ले हो जाएँगे। हमें आजादी चाहिए' - वे सब चिल्लाईं। 'मुझे तो बस प्रेम करने की आजादी चाहिए, फिर शादी हो कि न हो' , एक ने कहा। 'मुझे तो शादीशुदा होते हुए भी प्रेम की आजादी चाहिए', दूसरी ने कहा, 'विवाह के वचन और रिश्तों की सच्चाई जाए भाड़ में...' 'मुझे रोटी खा सकने की आजादी चाहिए' खुशी के शोर के बीच एक थकी-सी कमजोर आवाज ने कहा तो मैं चौंक गई। 'मुझे घर से निकल सकने, कमा सकने की

आजादी चाहिए।' 'मुझे मन मुताबिक सजने की, मन मुताबिक साथी चुनने की आजादी चाहिए'... मुझे तो जो जैसा है, उसे ही सहते रहने, कभी बदलने की न सोचने की आजादी चाहिए' 'मुझे चाहिए निर्णय की आजादी'... ' मुझे चाहिए'... 'मुझे चाहिए'... मेरे चारों ओर की आवाजें निरंतर तेज होती जा रही हैं। मुझे केंद्र में रखकर गोल घेरे में नाच रही उन महिलाओं की गति और आवाजें इतनी तेज होती जा रही हैं कि मैं लगातार डूब रही हूँ - नीचे और नीचे, और नीचे... रसातल की ओर।

अब मैंने कानों को ढक, अपना सर हाथों मे ले लिया है, और सर पकड़कर बैठ गई हूँ। मैं भाग जाना चाहती हूँ, इन सारी सोच से। सर दर्द से, मदर तेरेसा, पामेला बोर्डेस और मर्लिन मुनरो से... शकीरा से, शीला मैम, तुहिना, दिव्या, अनीता, श्रिया से... मैं मेघा पाटकर, किरण बेदी और वृंदा करात से भी भाग जाना चाहती हूँ। मैं इस शिकंजे को तोड़कर, सब कुछ उलट-पुलट करके महिला को बचा लेना चाहती हूँ। मैं अपनी बेटी के पनप सकने के लिए एक स्वस्थ माहौल बनाना चाहती हूँ। मैं पूर्वा को शादी के उत्सव से उठा लाकर, बेटे की बगल में पटक देना चाहती हूँ। मैं सुनीता और श्रिया को वैचारिक रूप से झकझोरकर जगा देना चाहती हूँ। मैं महिला दिवस पर चेन एसएमएस भेजने वाली हर महिला को असुविधाजनक सोच और कर्मों से बचने के लिए कठघरे में खड़ा करना चाहती हूँ।

मैं उन तमाम बेड़ियों को अभी ही काट डालना चाहती हूँ जो मेरी बिटिया के पाँवों में पड़ने वाली हैं।

बेचैनी में मैं आखिर उठ ही गई और जाकर अपनी किशोरी बेटी को जगा दिया - 'क्या तुम्हें पता है कि आज महिला दिवस है**?**'

'नहीं', उसने खीझे हुए, पर दृढ़ स्वर में कहा। 'मुझे किसी महिला दिवस या उसके इतिहास वगैरह की जानकारी देने की जरूरत नहीं ममा। मुझे सोने दो। मैं तुम्हारी तरह कमजोर नहीं हूँ। मेरे लिए हर दिन महिला दिवस होगा और मैं जैसे चाहूँ, जिऊँगी', वह बोली और चैन से करवट बदलकर सो गई।

यह सुनते ही मेरा तनाव कुछ क्षणों के लिए गल-सा गया। तो अभी आशा बची हुई थी। अगली पीढ़ी हथियार डालकर जीने को तैयार नहीं थी। मुझ पर मेहनत भरे काम के पूरा हो जाने के बाद की थकान छाने लगी... सही है, जैसे चाहो, जी सको... यहाँ तक पहुँच सकना ही तो है महिला दिवस की सार्थकता। एक छोटी-सी खुशी की उंगली पकड़ मैं नींद की गोद में चली गई।

कॉलबेल बजी। गहरी नींद सोई मुझे लगा कि मैंने कोई सपना देखा है। पर नहीं, बेल फिर से बजी। इतनी रात गए कौन आया आखिर? और सोसाइटी के सिक्योरिटी वालों ने आने कैसे दिया - बिना मुझे इत्तला दिए? एक बार तो मैं घबराई पर दिल कड़ा करके दरवाजा खोल ही दिया। सामने पति खड़े थे - मुस्कुराते हुए। 'तुम तो कल दोपहर तक पहुँचने वाले थे, टिकट भी कटा हुआ था... क्या हुआ?' मैं चौंकी। 'कल दोपहर नहीं, आज दोपहर... सुबह के चार बज रहे हैं', उन्होंने कहा। 'ओह... पर हुआ क्या, जल्दी क्यों चले आए? टिकट कैंसिल कराया कि नहीं?' मैंने सवालों की झड़ी लगा दी। 'घर के अंदर घुसकर बताऊँ?' वे बोले तो मैं सकपकाकर दरवाजे के सामने से हट गई और उनका सामान हाथों में ले लिया। बेडरूम में घुसते ही फिर पूछा - 'अब तो बताओ।' एक दुविधा उनके चेहरे पर साफ जाहिर थी। कुछ क्षण रुककर बोले - 'वह पूर्वा का पति है न... बनता तो बड़ा आधुनिक है, पर है अंदर से वही का वही पारंपरिक पुरुष... ट्रेन में बैठते ही जो उसका फोन आना शुरु हुआ तो हर पंद्रह मिनट, आधे घंटे में आता रहा... मैंने तो पहले यही सोचा कि पति-पत्नी में अब भी इतना प्यार है कि एक दूसरे को इतना मिस कर रहे हैं, पर तुमसे कल रात बात हुई उसके तुरंत बाद पूर्वा पास आकर रोने लगी।

पूछने पर बताया कि पति को शायद यह उम्मीद नहीं थी कि उसके हामी भरते ही वह सचमुच मेरे साथ चंडीगढ़ चल देगी... तो फोन कर-करके परेशान करके रख दिया सारे समय। उसके अलग जाकर बात करने को मैं सोचता रहा कि मेरे सामने पति से प्यार की बातें नहीं करना चाहती पर असल में पूरे समय दोनों में बहसें होती रही थीं। आधी रात के कुछ पहले उसने पूर्वा से कहा कि बच्चा किसी भी तरह चुप नहीं हो रहा और वह तुरंत चली आए... तो वह चाहती थी कि कोई टैक्सी कर दूँ ताकि वह चली जाए... अब अकेली कैसे छोड़ता उसे, तो मैं भी साथ चला आया। टैक्सी में वापस आते तो दोनों में इतना झगड़ा हुआ कि कभी तो पूर्वा चिल्ला पड़ती, जोर-जोर से बोलने-रोने लगती, कभी समझाने की कोशिश करती। मजा ही किरकिरा कर दिया उसका, उसके पति ने। पर वह भी क्या करती, उसने सोचा कि पापा से हिलामिला है बेटा, तो एक दिन तो रह ही लेगा। बेचारी सजी-धजी इतनी सुंदर लगती हुई भी रोती ही रही सारे समय। इतनी रात किसी को कार लेने के लिए जगा नहीं सकती थी तो मैंने उसे टैक्सी से उसके घर तक छोड़ा - घर के अंदर तक। कार बाद में उठा लेगी। बच्चा तो सचमुच जगा हुआ था, या फिर हो सकता है कि रोज ही इस वक्त जगता हो। पति ने कहा कि उसकी खुद की तबियत भी खराब लग रही है, बुखार आने वाला लगता है, पर मुझे तो वह ठीक-ठाक लग रहा था... खैर, छोड़ आया पूर्वा को! पता है कि अब लड़ेंगे दोनों जमकर...'

उन्होंने टिकट कैंसिल कराने के लिए लैपटॉप खोल लिया। मैं अपने अंदर का विश्लेषित करती, दुविधा में खड़ी रही। कायदे से तो मुझे खुश होना चाहिए था। आखिर नन्हें बच्चे को छोड़कर जाने के बारे में मेरी सोच सही जो निकली! पर कुछ समझ नहीं आ रहा था कि सुबह से पूर्वा को ही गलत समझती मैं, इस समय अचानक, खुद को उसके पक्ष में क्यों महसूस रही थी। उसके अंदर की मदर तेरेसा पर हावी मर्लिन मुनरो अब मुझे साल क्यों नहीं रही थी? क्यों गलत लग रहा था मुझे उसके पति का बर्ताव? गुस्सा था भी तो एक दिन तो जज्ब कर लेता भला आदमी मेरी तरह, प्रकट कुछ नहीं कहता! मैंने भी तो पति के पूर्वा के साथ चले जाने के बाद उनकी खुशी में बाधा नहीं डाली, टोका-टाकी नहीं की, जितना विरोध करना था, पहले ही किया... और फिर खुलेआम गई थी बॉस के साथ, कोई छुपाकर नहीं। मन में प्रपंच होता, कोई हिडन एजेंडा होता, तो छुप-छुपके, चुपके-चुपके जाती न... और मेरे पति भी तो मुझे बताकर गए थे। उनके मन में भी प्रपंच होता, तो बिन बताए जाते... इतना भी नहीं कि जब पत्नी पारदर्शी रिश्ता रख रही है, एक मिडिल एज बॉस के साथ बताकर गई है, तो एक दिन घूमने दे दे। मुझे आश्चर्य हुआ कि पूर्वा की खुशी में बाधा पड़ने के लिए मुझे वाकई बहुत दुख हो रहा था। आखिर मेरी बेटी भी तो यही चाहती है - जैसे चाहो, जियो... तो यही तो हो सकता है बीच का रास्ता, कि महिला भले माँ होने के कारण बँधी हुई जिए, कभी अंदर की महिला को खुलकर जीने भी दे।

तो क्या यह उसकी बच्चे को छोड़ने वाली बात नहीं थी, जिसने मुझे मार परेशान कर रखा था सुबह से, यह ईर्ष्या थी उससे कि जो वह कर पा रही है, मैं कभी नहीं कर पाई? और अब हताशा हो रही थी कि मेरी पीढ़ी से उसकी पीढ़ी तक कुछ बदला ही नहीं? वही एक शिकंजे में कसा जीवन - सोच में भी, बाहर से भी! मैं डूबने लगी। शायद मैं यह चाहती थी कि पूर्वा जाए तो, पर बच्चे को साथ लेकर। वह आजादी के नाम पर रिश्तों में आजादी लेने वाले उस समूह का हिस्सा साबित न हो, जो मुझ जैसी औरतों को शर्मिंदा कर देता है... उसके और मेरे पति के अगल-बगल के कमरों में रहते, बीच की दीवार ढह नहीं जाए, मेरे पति का महिलाओं की आजादी को लेकर अपने शरीर का जैसा चाहे, वैसा इस्तेमाल वाला वैचारिक पक्ष आज व्यवहार में परिवर्तित नहीं हो जाए... पर अफसोस कि ऐसा कुछ होना तो दूर, वह तो शादी में ढंग से सम्मिलित तक हुए बिना, रोती हुई वापस आ गई।

महिला दिवस की सारी बहसों को, स्त्री की आजादी की सारी संभावनाओं को धता बताती हुई - पति की जिद के सामने, उसके ईगो के सामने असहाय, ताकतविहीन। होना तो यह चाहिए था कि वह अपने अंदर की माँ को भी वैसे ही जिंदा रखती, जैसे

सजी-धजी आधुनिका को... और फिर पति की एक न चलने देती। हाँ, यही चाहती थी मैं! अपने अंदर के अबूझ को, भय को, ईर्ष्या को, विश्लेषित करके मैं अचानक से पूर्वा के पक्ष में मजबूती से खड़ी, उसके लिए खुद से ज्यादा बेचैनी महसूसने लगी। बस साज-सज्जा में ही मेरी पीढ़ी से दस कदम आगे निकल पाई, मानसिकता में वहीं की वहीं।

पति को अपनी सहूलियत के हिसाब से ढाल लेना, न इसके बस में, न मेरे; तो क्या कुछ भी नहीं बदलेगा कभी? हमेशा स्त्री ही मैनिपुलेट होती रहेगी... मैं बहसें करती हुई बैल बनी जिऊँगी, दिव्या बिना बहस किए; और पूर्वा एक दिन के लिए निकलने की हिम्मत दिखाकर भी रोती हुई वापस आएगी? मन हुआ कि पति से खूब लड़ूँ। इन बहसों का अंत क्या होना था आखिर, क्या बदलना था इनसे, पर बेचैनी इतनी ज्यादा थी कि न चाहकर भी बोल ही पड़ी मैं - 'इतना गुस्सा आ रहा है पूर्वा के पति पर कि क्या बताऊँ... और तुमने ही क्या कर लिया - स्त्री की आजादी के फतवे लहराकर? साथ ले गए थे, तो रोक क्यों नहीं पाए कल तक? क्या अब भी कोई महिला माँ बन गई तो मेरी पीढ़ी की महिलाओं की तरह घूमना-फिरना, जिंदगी जीना छोड़कर ही जिएगी? अच्छा लगेगा क्या कि महिलाएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक जैसा जीवन जिएँ, पति और बच्चों के गिर्द घूमता, उनकी ही सोच-सुविधा के अनुसार चलता जीवन... अपने लिए, अपने मन का कुछ हो ही नहीं उनके जीवन में? ठीक है कि पूर्वा को बच्चे को लेकर जाना चाहिए था पर पति एक दिन बच्चा नहीं सँभाल सकता, एक दिन पत्नी को जिम्मेदारियों से छुट्टी नहीं दे सकता, एक दिन पत्नी को खुश नहीं देख सकता? नहीं जाने देना था, तो पहले ही रोक लेता उसे, जब एक बार जाने दे दिया, तब दिन भर का यह नाटक कैसा? साला, कमीना कहीं का!!'

पति अचानक से मुझे पूर्वा के पक्ष में बोलती पा, आश्चर्य से मुझे देखते रह गए, पर मुझे उससे क्या फर्क पड़ना था! मैं कुढ़ती हुई बिस्तर पर लेटकर फिर से सोने की कोशिश करने लगी।

https://www.hindiadda.com/shikanja/